न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम

संदर्भ:

न्यायपालिका को संविधान के अंतर्गत एक सक्रिय भूमिका सौंपी गई है। न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम उसी रचनात्मकता और व्यावहारिक ज्ञान के पहलू हैं।

- न्यायिक सक्रियता की अवधारणा न्यायिक संयम के ठीक विपरीत है। न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम ऐसे दो शब्द हैं जिनका प्रयोग कुछ न्यायिक निर्णयों के पीछे के दर्शन और अभिप्रेरणा का वर्णन करने के लिये किया जाता है। न्यायिक सक्रियता निर्णय के एक ऐसे सिद्धांत को संदर्भित करती है जो विधि की भावना और बदलते समय पर विचार करती है, जबकि न्यायिक संयम विधि की कठोर व्याख्या और विधिक पूर्व-दृष्टांत पर निर्भर करता है।

न्यायिक संयम और न्यायिक सक्रियता का आशय और परिभाषा:

न्यायिक संयम (Judicial Restraint)

- न्यायिक संयम न्यायिक व्याख्या का एक सिद्धांत है जो न्यायाधीशों को स्वयं अपनी शक्तियों के प्रयोग को सीमित करने के लिये प्रोत्साहित करता है।
    - यह ज़ोर देता है कि जब तक विधियाँ स्पष्ट रूप से असंवैधानिक न हों, न्यायाधीशों को उन्हें निरस्त करने से बचना चाहिये।
    - न्यायिक संयम रखने वाले न्यायाधीश पूर्व के न्यायाधीशों द्वारा स्थापित उदाहरणों और उनके निर्णयों का सम्मान करते हैं।
- 'न्यायिक संयम' शब्द की कई अलग-अलग परिभाषाएँ दी गई हैं। उनमें से कुछ नीचे सूचीबद्ध हैं:

ऑबर्न विश्वविद्यालय (Auburn University)

- ऑबर्न यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित 'Glossary of Political Economy Terms' में न्यायिक संयम को इस दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया गया है कि "उच्चतम न्यायालय (और अन्य निचले न्यायालयों) को संविधान और विधियों में न्यायाधीशों को स्वयं के दर्शन या नीतिगत प्राथमिकताओं को पढने के बजाय जब भी युक्तिपूर्वक संभव हो, विधि की व्याख्या करनी चाहिये ताकि संसद/कॉन्ग्रेस, राष्ट्रपति और राज्य सरकार जैसे अन्य सरकारी संस्थाओं द्वारा उनके संवैधानिक प्राधिकार के दायरे में लिये गए नीति-निर्णयों पर किसी टिप्पणी या अटकलों से बचा जा सके। इस तरह के दृष्टिकोण में न्यायाधीशों के पास नीति निर्माताओं के रूप में कार्य करने का जनादेश नहीं होता और उन्हें संघ सरकार और राज्यों के निर्वाचित 'राजनीतिक' अंगों द्वारा नीति निर्माण के मामले में लिये गए निर्णयों का तब तक सम्मान करना चाहिये जब तक ये नीति निर्माता अमेरिकी संविधान और विभिन्न राज्यों के संविधानों द्वारा उन्हें प्रदत्त शक्तियों के दायरे में बने रहते हैं।"
- न्यायिक संयम न्यायिक समीक्षा के अभ्यास के लिये एक प्रक्रियात्मक या सारभूत दृष्टिकोण है। एक प्रक्रियात्मक सिद्धांत के रूप में न्यायिक संयम न्यायाधीशों से विधिक विषयों पर और विशेष रूप से संवैधानिक विषयों पर निर्णयन से बचने का आग्रह रखता है, जब तक कि विरोधी पक्षों के बीच किसी ठोस विवाद के समाधान के लिये ऐसा निर्णयन आवश्यक न हो। सारभूत सिद्धांत के रूप में यह संवैधानिक प्रश्नों पर विचाररत न्यायाधीशों से अपेक्षा रखता है कि वे निर्वाचित संस्थाओं के विचारों के प्रति पर्याप्त सम्मान रखें और उनके कृत्यों को केवल तभी अमान्य घोषित करें जब उनके द्वारा संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन किया गया हो।
- न्यायालयों को नए विचारों या नीतिगत प्राथमिकताओं को बढ़ावा देने के लिये न्यायिक समीक्षा का उपयोग करने से बचना चाहिये । संक्षेप में, न्यायालयों को विधि की व्याख्या करनी चाहिये और नीति-निर्माण में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये ।
- न्यायाधीशों को निम्नलिखित आधारों पर निर्णय लेने का प्रयास करना चाहिये :
    - संविधान निर्माताओं का मूल आशय।
    - पूर्व-दृष्टांत अर्थात् पूर्व के मामलों के निर्णय।
    - न्यायालय को नीति निर्माण का कार्य दूसरों के लिये छोड़ देना चाहिये ।
    - वे अपने निर्णयों द्वारा नई नीतियों की स्थापना करने की प्रवृत्ति से स्वयं को रोकते हैं।
    - वे दृढ़ता से संविधान के प्रावधानों के आधार पर निर्णय लेते हैं।

न्यायिक सक्रियता

- 'न्यायिक सक्रियता' शब्द का प्रयोग प्रायः 'न्यायिक संयम' के विपरीत आशय में किया जाता है। न्यायिक सक्रियता एक बदलते समाज में न्यायिक दृष्टिकोण की एक गतिशील प्रक्रिया है। ऑर्थर स्लेसिंगर जूनियर ने जनवरी 1947 में फॉर्च्यून पत्रिका में प्रकाशित 'द सुप्रीम कोर्ट: 1947' शीर्षक लेख में पहली बार "ज्यूडिशियल एक्टिविज़्म" (Judicial Activism) शब्द का प्रयोग किया था।
- ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी (Black's Law Dictionary) के अनुसार, न्यायिक सक्रियता एक 'न्यायिक दर्शन है जो न्यायाधीशों को पारंपरिक पूर्व-दृष्टांतों या निर्णयों से हटकर प्रगतिशील और नई सामाजिक नीतियों के पक्ष में आगे बढ़ने को प्रेरित करती है।'
- हाल के वर्षों में न्यायालयों की न्यायिक सक्रियता के माध्यम से विधि निर्माण में नए आयाम ग्रहण कर लिये गए हैं। न्यायपालिका ने सामाजिक संदर्भ में विधि की व्याख्या करने की एक स्वस्थ प्रवृत्ति को अपनाया है।
- न्यायिक सक्रियता उन न्यायिक निर्णयों को प्रकट करती है जिन पर विद्यमान विधि के बजाय व्यक्तिगत या राजनीतिक विचारों पर आधारित होने का संदेह है।
- न्यायाधीशों से अपेक्षा की जाती है कि वे निर्णय देते समय विधि की व्याख्या संविधान के अनुसार करें। लेकिन न्यायिक सक्रियतावादी न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विधिक मामलों पर विधि निर्माण के लिये अपनी इच्छा का प्रयोग करते प्रतीत होते हैं।
- न्यायिक सक्रियता का प्रश्न संवैधानिक व्याख्या, सांविधिक संरचना और शक्तियों के पृथक्करण से घनिष्ट रूप से संबंधित है। इसे कभी-कभी न्यायिक संयम के विलोम के रूप में भी उपयोग किया जाता है।
- मामलों पर निर्णय लेते समय न्यायाधीशों को यह सुनिश्चित करना चाहिये कि विधि की व्याख्या और उसका प्रवर्तन समकालीन परिस्थितियों व मूल्यों में हो रहे परिवर्तनों के आधार पर किया जाए। चूँकि समाज में परिवर्तन होता रहता है और उसकी मान्यताएँ व मूल्य भी बदलते रहते हैं, न्यायालयों के निर्णयों में उनका प्रतिबिंब होना चाहिये।
- न्यायिक सक्रियता के विचार के अनुसार न्यायाधीशों को अन्यायपूर्ण कृत्यों के प्रतिकार के लिये अपनी शक्तियों का उपयोग करना चाहिये विशेष रूप से जब सरकार के अन्य अंग इस दिशा में प्रयास नहीं करते।
  - संक्षेप में, न्यायालयों को नागरिक अधिकारों, व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा, राजनीतिक भेदभाव और सार्वजनिक नैतिकता जैसे विषयों पर सामाजिक नीति को आकार देने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिये।
  - **मेनका गांधी मामले** में उच्चतम न्यायालय का निर्णय, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 से संबंधित निर्णय आदि न्यायिक सक्रियता के उदाहरण हैं।

न्यायिक संयम की प्रवृत्तियाँ

- **डिवीजनल मैनेजर, अरावली गोल्फ कोर्स बनाम चंदर हास** मामले (2008) में उच्चतम न्यायालय ने भारतीय संविधान में निहित शक्तियों के पृथक्करण पर विस्तार से चर्चा की। भारत का संविधान न्यायपालिका के सुपर लेजिस्लेचर (Super Legislature) बनने या अन्य दोनों अंगों की विफलता की स्थिति में एक विकल्प बनने की परिकल्पना नहीं करता। इस प्रकार न्यायपालिका को अपनी सीमाएँ निर्धारित करने की आवश्यकता है।
- न्यायिक संयम का एक उदाहरण **राजस्थान राज्य बनाम भारत संघ** का मामला है जिसमें न्यायालय ने इस आधार पर **याचिका को खारिज कर दिया कि इसमें एक राजनीतिक प्रश्न शामिल था और इसलिये न्यायालय इस मामले में हस्तक्षेप करेगा।**
- एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ मामले में न्यायाधीशों ने कहा कि कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं जहाँ राजनीतिक तत्त्व अभिभावी होते है और वहाँ न्यायिक समीक्षा संभव नहीं होती।
- अनुच्छेद 356 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग को एक राजनीतिक प्रश्न माना गया है और इसलिये न्यायपालिका को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। न्यायमूर्ति अहमदी ने कहा कि राजनीतिक निर्णयों के परीक्षण के लिये न्यायिक रूप से प्रबंधनीय मानदंडों को विकसित करना कठिन है और यदि न्यायालय ऐसा करते हैं तो यह राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना और राजनीतिक विवेक को प्रश्नगत करना होगा, जिनसे न्यायालय को बचना चाहिये।
- अलमित्रा एच. पटेल बनाम भारत संघ मामले में दिल्ली में स्वच्छता के मुद्दे पर नगर निगम को निर्देश देने के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह न्यायालय का काम नहीं है कि वह नगर निगम को यह निर्देश दे कि वह अपने बुनियादी कार्य कैसे करे और उसकी कठिनाइयों को कैसे दूर करे। न्यायालय अधिकारियों को केवल यह निर्देश दे सकता है कि वे विधि द्वारा सौंपे गए कार्यों के अनुरूप अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करें।
- भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए.एस. आनंद ने एक सार्वजनिक व्याख्यान में कहा कि न्यायिक सक्रियता 'न्यायिक दुस्साहस' (Judicial Adventurism) न बन जाए, इसके लिये आवश्यक है कि न्यायाधीश अपने न्यायिक कार्यों के निर्वहन में सतर्कता व आत्म-अनुशासन का पालन करें। न्यायिक सक्रियता का सबसे बड़ा दुष्परिणाम इसकी अप्रत्याशितता है। यदि न्यायाधीश आत्म-संयम का अभ्यास नहीं करेंगे तो प्रत्येक न्यायाधीश स्वयं में ही एक कानून बन जाएंगे और वे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं पर निर्देश जारी करने लगेंगे, जिससे अराजकता पैदा होगी।
- भारत का उच्चतम न्यायालय अपने प्रारंभिक वर्षों में रूढ़िवादी बना रहा लेकिन बाद के वर्षों में न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर, कृष्णा अय्यर, पी.एन. भगवती आदि, जिन्होंने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 की व्याख्या के बहाने न्यायिक निर्णयों द्वारा कई विधिक मानदंडों का सृजन किया, के सामाजिक दर्शन के माध्यम से न्यायिक सक्रियता का उभार हुआ।
  - भारतीय संविधान का भाग III वाक्-स्वतंत्रता, दैहिक स्वतंत्रता, समानता, धार्मिक स्वतंत्रता जैसे मूल अधिकारों का उपबंध करता है जो प्रवर्तनीय हैं।
  - दूसरी ओर भाग IV, जिसे 'राज्य के नीति निदेशक तत्व' कहा जाता है, में कार्य, शिक्षा, आजीविका निर्वाह और स्वास्थ्य के अधिकार जैसे सामाजिक-आर्थिक आदर्श शामिल हैं जो प्रवर्तनीय नहीं हैं लेकिन जिनकी प्राप्ति के लिये राज्य को प्रयास करने के लिये निर्देशित किया गया है।
  - हालाँकि अनुच्छेद 37 में कहा गया है कि निदेशक तत्त्व अप्रवर्तनीय हैं लेकिन भारत के उच्चतम न्यायालय ने इनमें से कुछ को मूल अधिकारों के रूप में देखते हुए (जैसे उन्नीकृष्णन मामले में शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद 21 के साथ पढ़ा गया) प्रवर्तित किया है।
- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 से संबंधित मामलों में भारतीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की एक सक्रिय भूमिका रही है। इसलिये यहाँ इसका पृथक विवेचन किया जा रहा है।

अनुच्छेद 21 और न्यायिक सक्रियता

- अनुच्छेद 21 में कहा गया है- 'किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।'
- ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले में भारतीय उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करने के लिये न केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन किया जाना चाहिये बल्कि यह प्रक्रिया निष्पक्ष, तार्किक और न्यायसंगत भी होनी चाहिये। किसी अन्य दृष्टिकोण को अपनाने पर अनुच्छेद 21 में सम्यक प्रक्रिया (Due Process) को शामिल करना होगा जिसे संविधान के निर्माण के समय इसमें शामिल नहीं किया गया था।
- हालाँकि बाद में मेनका गांधी बनाम भारत संघ मामले में न्यायिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 में सम्यक प्रक्रिया की इस आवश्यकता को शामिल कर लिया गया। इस प्रकार, सम्यक प्रक्रिया का उपखंड, जिसे संविधान निर्माताओं द्वारा सतर्कतापूर्वक और जान-बूझकर छोड़ दिया गया था, उसे भारतीय उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता के माध्यम से संविधान में शामिल कर दिया गया।
- भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा न्यायिक सक्रियता के एक और वृहत दौर का आरंभ तब हुआ जब इसने अनुच्छेद 21 में शामिल 'जीवन' (Life) शब्द की व्याख्या केवल जीवित रहने या जैविक अस्तित्व तक सीमित रूप से करने की बजाय गरिमापूर्ण मानव जीवन के रूप में की।
- फ्रांसिस कोर्ली बनाम केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जीवन का अधिकार केवल पशुवत अस्तित्व तक सीमित नहीं है। इसका अर्थ शारीरिक उत्तरजीविता (Physical Survival) से बढ़कर है।
- न्यायालय ने कहा कि जीवन के अधिकार में मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार शामिल है। मानवीय गरिमा के लिये बुनियादी आवश्यकताओं का पूरा होना सबसे महत्त्वपूर्ण है। जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं में पर्याप्त पोषण, वस्त्र, आवास, पढाई-लिखाई एवं विभिन्न तरीकों से स्वयं को अभिव्यक्त करने की सुविधा, निर्बाध विचरण और लोगों के साथ घुलने-मिलने की स्वतंत्रता भी शामिल है।
- आर. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु राज्य मामले में एक नए अधिकार 'निजता के अधिकार' (Right to Privacy) को अनुच्छेद 21 में शामिल माना गया। न्यायालय ने कहा कि किसी नागरिक को अन्य विषयों के साथ स्वयं की, परिवार की, विवाह, संतानोत्पत्ति, मातृत्व, गर्भधारण, शिक्षा आदि के संबंध में निजता की रक्षा का अधिकार प्राप्त है।
- उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय भी दिया कि अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार भी शामिल है। कपिला हिंगोरानी बनाम भारत संघ मामले में भोजन के अधिकार को जीवन के अधिकार के अंग के रूप में चिह्नित किया गया जहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया कि यह राज्य का कर्त्तव्य है कि उन परिस्थितियों में आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराए जहाँ लोग भोजन का खर्च उठाने में असमर्थ हैं।
- न्यायालय ने यह भी माना है कि सुरक्षित पेयजल का अधिकार मूल अधिकारों में से एक है जो जीवन के अधिकार में शामिल है। निष्पक्ष सुनवाई (Fair Trial) का अधिकार, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा देखभाल का अधिकार, जलकुंडों, तालाब, जंगल आदि का संरक्षण (जो गुणवत्तापूर्ण जीवन सुनिश्चित करते हैं), पारिवारिक पेंशन का अधिकार, विधिक सहायता व विधिक परामर्शदाता पाने का अधिकार, यौन उत्पीड़न के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार, दुर्घटनाओं के मामले में चिकित्सा सहायता का अधिकार, एकांत कारावास के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार, हथकड़ी और ज़ंजीर से बंदी बनाए जाने के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार, त्वरित सुनवाई का अधिकार, पुलिस अत्याचार, यातना और हिरासत में हिंसा के विरुद्ध सुरक्षा का अधिकार, कारावास नियमों के अनुरूप साक्षात्कार देने और आगंतुकों से मिल सकने का अधिकार, न्यूनतम मजदूरी का अधिकार आदि को अनुच्छेद 21 में अभिव्यक्त 'जीवन के अधिकार' में शामिल करने का निर्णय लिया गया।
- हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने सेंटर फॉर एन्वायरनमेंट लॉ बनाम भारत संघ मामले में पर्यावरण संरक्षण को अनुच्छेद 21 का अंग मानते हुए एशियाई शेरों के लिये एक दूसरा पर्यावास उपलब्ध कराने का निर्देश जारी किया। इसी प्रकार ऐसे ही एक मामले में उच्चतम न्यायालय ने सोने के अधिकार (Right to Sleep) को अनुच्छेद 21 का अंग बताया। अजय बंसल बनाम भारत संघ वाद में उच्चतम न्यायालय ने उत्तराखंड में फँसे व्यक्तियों के लिये हेलीकॉप्टर उपलब्ध कराने का निर्देश जारी किया।
- इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक सक्रियता के कारण अनुच्छेद 21 से कई अधिकारों की उत्पत्ति हुई है। हालाँकि इनमें से कई आदेशों को लेकर व्यापक आशंकाएँ भी व्यक्त की गई हैं। अभी यह स्थिति स्पष्ट नहीं है कि न्यायालय के आदेशों से उत्पन्न होते अधिकारों की संख्या पर कोई सीमा आरोपित होगी या नहीं।
- भगवान दास बनाम दिल्ली राज्य मामले के निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने 'ऑनर किलिंग' (Honour Killing) (अर्थात् जाति या धर्म या गोत्र से बाहर या स्वग्राम में विवाह करने वाले युवक-युवतियों की हत्या) के लिये मृत्युदंड को अनिवार्य बना दिया और इस प्रकार माता-पिता या उनकी जाति के प्रति 'तिरस्कार' का भाव प्रकट किया।
- न्यायिक सक्रियता का एक नवीनतम मामला अरुणा रामचंद्र शानबाग बनाम भारत संघ एवं अन्य का है। अरुणा शानबाग मुंबई के एक अस्पताल में कार्यरत नर्स थी जिस पर वर्ष 1973 में यौन हमला किया गया था और वह तब से कोमा में अथवा निष्क्रिय अवस्था में पड़ी है। अरुणा के इसी अवस्था में बने रहने के 37 वर्षों बाद वर्ष 2011 में उसकी मित्र होने का दावा करने वाली एक सामाजिक कार्यकर्त्ता ने उच्चतम न्यायालय में याचिका देकर उसके लिये 'इच्छा मृत्यु' (Euthansia) की मांग की, किंतु इस ऐतिहासिक निर्णय में न्यायालय ने केवल निष्क्रिय इच्छा मृत्यु (Passive Euthanasia) की अनुमति दी अर्थात् स्थायी रूप से कोमा में पड़े व्यक्ति का लाइफ सपोर्ट हटाया जा सकता है जिसका अनुमोदन उच्च न्यायालय से प्राप्त करना होगा।

न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक संयम

- न्यायिक सक्रियता (शिथिल संरचनावादी) और न्यायिक संयम (कठोर संरचनावादी) के बीच का अंतर संविधान की व्याख्या करने के तरीके पर निर्भर है। कोई कठोर संरचनावादी न्यायाधीश संविधान की शाब्दिक व्याख्या करते हुए अथवा संविधान निर्माताओं की मूल मंशा का ध्यान रखते हुए मामलों का निर्णयन कर सकता है, जबकि कोई शिथिल संरचनावादी अथवा न्यायिक सक्रियतावादी न्यायाधीश संविधान के निर्माण से लेकर वर्तमान समय तक आए परिवर्तनों का भी ध्यान रखते हुए वृहत तरीके से मामलों का निर्णयन कर सकता है।
- न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम दो विपरीत दृष्टिकोण हैं। न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम किसी देश की न्यायिक प्रणाली से संबंधित हैं और वे सरकार या किसी भी संवैधानिक निकाय की शक्तियों के मनमाने उपयोग के विरुद्ध नियंत्रण का कार्य करते हैं।
  1. न्यायिक सक्रियता समकालीन मूल्यों और परिदृश्यों की पैरोकारी के लिये संविधान की व्याख्या है। दूसरी ओर, न्यायिक संयम किसी विधि को निरस्त करने की न्यायाधीशों की शक्तियों को सीमित करता है।
  2. न्यायिक संयम में न्यायालय संसद और राज्य विधानमंडलों के सभी विधानों की पुष्टि करता है यदि वे देश के संविधान का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं।

न्यायिक संयम में न्यायालय सामान्यतः संसद या किसी अन्य संवैधानिक निकाय द्वारा प्रस्तुत संविधान की व्याख्याओं का सम्मान करते हैं।
3. न्यायिक संयम और न्यायिक सक्रियता के मामले में न्यायाधीशों को किसी अन्यायपूर्ण कृत्य में सुधार के लिये अपनी शक्तियों के उपयोग की आवश्यकता होती है, विशेषकर जब अन्य संवैधानिक निकाय कार्य नहीं कर रहे हों। इसका आशय यह है कि व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा, नागरिक अधिकारों, सार्वजनिक नैतिकता और राजनीतिक भेदभाव जैसे विषयों पर सामाजिक नीतियों को आकार देने में न्यायिक सक्रियता की अहम भूमिका है।
4. न्यायिक सक्रियता और न्यायिक संयम के लक्ष्य अलग-अलग हैं। न्यायिक संयम सरकार के तीनों अंगों- न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका के बीच संतुलन बनाए रखने में सहायता करता है। न्यायिक संयम के मामले में न्यायाधीश और न्यायालय प्रवर्तित विधियों को संशोधित करने के बजाय उनकी समीक्षा को प्रोत्साहित करते हैं।
5. न्यायिक सक्रियता के लक्ष्यों पर विचार करें तो यह कुछ अधिनियमों या निर्णयों को निरस्त करने की शक्ति प्रदान करता है। उदाहरण के लिये उच्चतम न्यायालय या अपीलीय न्यायालय पूर्व के निर्णयों को पलट सकते हैं यदि वे दोषपूर्ण हों। यह न्यायिक प्रणाली नियंत्रण और संतुलन का भी कार्य करती है और सरकार के तीनों अंगों- न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका को असीमित शक्तिशाली बनने से रोकती है।
6. न्यायिक संयम में न्यायाधीश संविधान निर्माताओं की मूल मंशा पर विचार करते हैं जबकि न्यायिक सक्रियता में न्यायाधीश संविधान निर्माताओं की मूल मंशा के परे जाकर विचार करते हैं (क्योंकि अंततः संविधान निर्माता भी मनुष्य थे और उनसे भी भूल हो सकती है)।
7. न्यायिक संयम का दृष्टिकोण रखने वाले न्यायाधीश अपने निर्णयन में विधि निर्माताओं (Legislatures) के उद्देश्यों व अधिनियम की भाषा पर विचार करते हैं और संविधान की मूल भाषा में परिवर्तन का अवसर केवल संविधान संशोधन के आधार पर देते हैं।

निष्कर्ष

- जब न्यायाधीश यह मानने लगते हैं कि वे समाज की सभी समस्याओं को हल कर सकते हैं और इस दृष्टिकोण से विधायिका व कार्यपालिका के कार्य भी स्वयं करने लगते हैं (क्योंकि उन्हें लगता है कि विधायिका व कार्यपालिका अपने कर्त्तव्य निर्वहन में विफल रहे हैं) तब विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
- निश्चय ही न्यायाधीश कुछ चरम मामलों में हस्तक्षेप कर सकते हैं, लेकिन समाज की सभी प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिये उनका आगे आना अनुपयुक्त है क्योंकि इसके लिये न तो उनके पास विशेषज्ञता होती है और न ही संसाधन होते हैं।
- इसके साथ ही जब न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका के कार्य क्षेत्र का अतिक्रमण करने लगती है तो परिहार्य रूप से इस पर राजनेताओं एवं अन्य की तीखी प्रतिक्रिया आती है।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/judicial-activism-and-judicial-restraint